International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

रस और ध्वनि सिद्धान्त की मनोवैज्ञानिकता

डॉ0 संध्या त्रिपाठी *
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
सेण्ट एण्ड्रयूज पी0जी0 कालेज, गोरखपुर
एवं
डॉ0 छाया रानी
अध्यक्ष, संस्कृत एवं प्राकृत भाषा विभाग,
दी0द0उ0गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर
* Corresponding Author E-mail ID: sandhyatripathi238@gmail.com

शोध सारांश

प्राचीन साहित्यशास्त्रीय ग्रन्थों से लेकर आधुनिक काल तक के जो भी साहित्य शास्त्र के ग्रन्थों का प्रणयन हुआ है उनमें साहित्यशास्त्रियों की मनोवैज्ञानिकता स्पष्टतया प्रदर्शित हुई है। इसका विस्तृत विवेचन भारत मुनि से ही आरम्भ हो जाता है, जिसको अनेक परवर्ती आचार्यों ने भी ग्रहण किया है। रस के सन्दर्भ में तो यह और भी महत्वपूर्ण हो जाता है क्यों कि कवि या काव्यशास्त्री मानव मन का अध्ययन किये बिना अपने कृत्य में सफल नहीं हो सकता है। रस सिद्धान्त की पृष्ठभूमि भी हमारी सूक्ष्म मानसिक वृत्ति पर आधारित है। विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी भाव, एक चेतन मन की ही क्रियायें हैं तथा अनेक प्रकार के जो भी काव्यगत, रसगत, व साहित्यगत विचार है वे मन की विशेष मनोदशा के परिचायक हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि रस व ध्वनि सिद्धान्त के मूल में मानसिक व्यायाम की पराकाष्ठा परिलक्षित होती है जो पूर्ण मनोवैज्ञानिक है।

शोध पत्र

जिस प्रकार वैयक्तिक विभिन्नताओं के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति शारीरिक रूप से एक दूसरे से भिन्न होता है उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति की अपनी मानसिक सत्ता होती है जिसकी

दूसरे के समानता नही की जा सकती। कुछ क्रियायें समान हो सकती है परन्तु सम्पूर्ण नही। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति एक स्वतन्त्र रूप मेंमनोविज्ञान का प्रयोज्य है जिसके अध्ययन के उपरान्त अन्य व्यक्ति से भिन्न तथ्य का संकलन किया जा सकता है। इन विशेषताओं के आधार पर रस के सम्बन्ध में विभिन्न आचार्यो के मतों में भिन्नता होने का प्रमाण मिल जाता है जो पूर्णतया मनोवैज्ञानिक है।

आचार्य भरत के अनुसारः सर्वप्रथम आचार्य भरत मुनि ने रस सिद्धान्त का सूत्र दिया–

विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रस निष्पत्ति [1] ।

भट्टलोल्लट के अनुसारः भट्टलोल्लट ने रस की अवस्थित नायक में मानी है और दर्शक चमत्कृत होकर आनन्द लेता है [2]।

विभावैर्ललनोद्यानादि .....।

श्री शंकुक के अनुसारः रामादि के विभावादि का नट अपनी शिक्षा और कार्य कुशलता से अभिनय करता है। कि वे विभावादि नट के ही प्रतीत होते है। इस प्रकार अनुकरण के बल पर चित्र–तुरग न्याय से नट में रस का अनुमान किया जाता है तथा अनुमान कर्त्ता दर्शक को भी उससे आनन्द मिलता है। इस प्रकार अनुकार्य नट में रस रहता है। सामाजिक रस का अनुमान कर लेते है [3]।

राम एवायम अयमेव राम .....।

भट्टनायक के अनुसार :– इन्होनें रस की अवस्थिति प्रेक्षक में मानी है। किन्तु इस रस की उत्पत्ति के लिए अभिधा, भावकत्व, भोजकत्व तीन काव्य व्यापार की सृष्टि की है [4]।

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

नताटस्थ्येन नात्मगत्वेन रसः..... ।

अभिनव गुप्त के अनुसार :–अभिनव गुप्त ने कहा है कि स्थायी वासना रूप में प्रेक्षक के हृदय में विद्यमान रहते है। अभिनेता अभिनय द्वारा विभावादि से स्थायी भाव की अभिव्यक्ति करा देता है [5]।

लोके प्रमदादिभिः ..... ।

धनन्जय के अनुसार :– धनन्जय ने रस की अवस्थिति नट तथा प्रेक्षक दोनों के अन्दर मानी है[6]।

विभावैरनुभावैश्च सात्विकैर्व्यभिचारिभिः

आनीयमानः स्वाद्यत्वं स्थायी भावो रसः।।

इन मतों के निष्कर्ष रूप में कहा जाता है कि स्थायी भाव जब विभाव अनुभाव व संचारी भावों के योग से आस्वादन करने योग्य हो जाता है तब सहृदय प्रेक्षक के हृदय में रस रूप में उसका आस्वादन होता है। स्थायी भाव के अनुभव और उसके रसास्वादन में भेद है। अनुभव में भाव की सुख–दुख पूर्ण प्रकृति के अनुसार अनुभवकर्त्ता को भी सुख–दुख होता है, परन्तु उनका आस्वादन इनसे रहित है। इनकी अवस्थिति न नायक में मानी जा सकती है और न नट में (क्योंकि रस तो वर्तमान वस्तु है और नायक भूतकाल में था, वर्तमान में नही है और नट का कार्य तो नायकादि का अभिनय से अनुकरण मात्र करना है वह तो केवल विभावादि को प्रेक्षक के सामने प्रदर्शित भर कर देता है। रस की अवस्थिति सहृदय प्रेक्षक में है। प्रेक्षक में भी स्थायी भाव आदि के ज्ञानमात्र ही से रस उत्पन्न नही होता। रस की स्थिति सामाजिक

के हृदय में स्वीकार की गयी है। इस रस के रसास्वादन के समय विशेष प्रकार की अनुभूति होती हैऔर वह अनुभूति अनिर्वचनीय होती है और उस समय व्यक्ति को अनुमान संशय, तर्क, निष्कर्ष का ज्ञान नही रहता है। निश्चय ही उस अवस्था विशेष में मन या, आन्तरिक तत्व, जो एकनिष्ठ रूप से उस वर्तमान विषय के प्रति तल्लीन हो जाता है उस स्थिति में व्यक्ति को स्व का भी ज्ञान नहीं रहता है। उत्पत्ति , अनुमिति, भुक्ति, अभिव्यक्ति नही रस की केवल अनुभूति होती है और उसी अनुभूति के सहारे सहृदय को रसास्वादन हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति की अनुभूति के प्रकार में कुछ भिन्नता भी होती है जो मनोवैज्ञानिक कारणों से होती है। एक महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि रस एक ही है और उसकी सभी आचार्यो ने अपने अनुभव के आधार पर व्याख्यायित किया है जो कि उनकी मानसिकता को व्यक्त करता है। भट्टलोल्लट ने नायक में जो रस की स्थिति मानी है उसमें यह तथ्य सामने आता है कि यदि रस नायक में चमत्कार उत्पन्न करता है तो दर्शक उसके आनन्द से आनन्दित नही हो पाता क्योंकि किसी अन्य के रसास्वादन से किसी अन्य व्यक्ति को रसास्वादन हो यह संभव नही। यह रस विषयक मान्यता अग्राहय है और यहां पर प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक कारण वैयक्तिक भिन्नता की अवहेलना की गयी है। शंकुक ने नायक के विभावादि को नट में आरोपित करके तथा अभिनय कुशलता द्वारा रस सामाजिकों द्वारा अनुमिति करके रसास्वादन की बात कही है जो पूर्ववत मत के समान ही अप्रासंगिक है। भट्टनायक ने रस की रस की अवस्थिति प्रेक्षक मेंमानी है। किन्तु रस की उत्पत्ति के लिए अभिधा भावकत्व, भोजकत्व की कल्पना की है जो कि उनकी स्वानुभूति है। इन तीनों शक्तियों को मानने का कोई औचित्य नही रस की अनुभूति

संस्कारजन्य होती है यदि प्रमाता के चित्त में रत्यादि के संस्कार विद्यमान है तो उन्हे स्वतः विभावादि के द्वारा उत्पन्न रस की अनुभूति व रसास्वादन (अर्थात आह्लादकारी चमत्कार) की प्राप्ति हो जाती है। हां इन्होनें रस को प्रेक्षक ह्रदय में विद्यमान माना है क्योंकि इसके बिना उसे रसास्वादन नही हो सकता यह सिद्धान्त प्रेक्षक की मनोदशा पर आधारित है। यदि प्रेक्षक मानसिक रूप से रसास्वादन के लिये तैयार नही तो उसे रसानुभूति कदापि नही होगी।

रस के विषय मे अभिनव गुप्त का मत पूर्णतः मनोवैज्ञानिक है जो सामाजिक के ह्रदय में विद्यमान रत्यादि स्थायी भाव को अभिनेता के अभिनय द्वारा अभिव्यक्त करा देना है। यहां पर यह तथ्य विचारणीय है कि अभिनेता केअभिनय में प्रेक्षक को किसी भी प्रकार का अनुमान भ्रम या मिथ्या प्रतीति नही होती है वह वास्तविकता से परिचित होकर भी उसके विभावादि को अपने उपर अरोपित करके अथवा स्वतः तदनुरूप होकर विशेष प्रकार की मनः स्थिति के क्रियाशील हो जाने के कारण रसानुभूति को प्राप्त कर लेता है। क्योंकि ये भावनाएं प्रत्येक व्यक्ति में विद्यमान होती है ये जन्मजात प्रवृत्तियां होती है न कि अर्जित और परिस्थिति जन्य। हां वातावरण का प्रभाव अवश्य होता है वहां से इसे उत्पन्न सामग्री प्राप्त होती है अन्यथा यह सुप्तावस्था में होती है जो विभावादि है वो इन्हें करने का कार्य करते है जिससे रस परिपक्वावस्था को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार प्रेक्षक रस का वास्तविक भोक्ता होता है न कि नट अथवा नायकादि, यदि उनमें रसानुभूति होती भी है तो उन्हे स्वयं की भावनाओं के आधार पर नायक या नट स्वयं के उपर उन चरित्रों को आरोपित करके उनके भावों को अभिनय करते समय तदनुकूल भावों में डूब सकता है क्योंकि अभिनय कला में भी मन का

अवस्थित होना अत्यन्तावश्यक है परन्तु नायक को रत्यादि की अनुभूति होने से सामाजिक को उसकी अनुभूति नही होगी। चौदहवी शती में आचार्य विश्वनाथ ने रस स्वरूप विषयक मत को इस प्रकार प्रस्तुत किया है– चित्त में सतोगुण के उद्रेक की स्थिति में विशिष्ट संस्कारवान सहृदय जन अखण्ड, स्वप्रकाशमान, चिन्मय अन्य सभी प्रकार के ज्ञान से विनिर्मुक्त ब्रहमस्वाद सहोदर लोकोत्तरचमत्कारी रस का निज स्वरूप से अभिन्न आस्वादन करते है।[7]

सत्त्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशानन्दचिन्मयः

वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रहमस्वादसहोदरः।

विश्वनाथ द्वारा किये गये विवेचन से निम्नलिखित तथ्य सामने आते है।

(1) रस आस्वादन का विषय है, अर्थात उसका केवल आस्वादन के द्वारा ज्ञान संभव है अन्य प्रकार सें नही।

(2) उसका अविर्भाव सत्व गुण की उद्रेक की स्थिति में होता है अर्थात जब व्यक्ति के चित्त में सत्व गुण का प्रभाव होता है सत्व गुण की स्थिति बनी होती है अन्य गुण अपना अस्तित्व खो देते है उसी समय व्यक्ति को रस की अनुभूति होती है। अथवा यह कहा जा सकता है कि रसास्वादन के समय व्यक्ति की मनः स्थिति सात्विक वृत्ति का आश्रय ले लेती है।

(3) रस अखण्ड होता है। तात्पर्य यह है कि रस का स्वरूप खण्डित नही होने वाला है वह एक पूर्ण रूप में व्यक्ति के चित्त को आह्लादित करता है न कि टुकड़ो में, यह स्थिति विशेष के प्रभावशाली होने पर व्यक्ति स्थिर चित्त हो जाता है।

(4) रस अन्य ज्ञान से रहित है। इसकी अनुभूति काल में व्यक्ति पूर्ण रूप से उसी ज्ञान के प्रति केन्द्रित हो जाता है उस समय वैसी ही स्थिति क्रियान्वित हो जाती है जिसमें व्यक्ति को अन्य ज्ञान की संभावना भी नही रहती है। वह अनुभूति के साथ पूरी तरह से तादात्म्य स्थापित कर लेता हैकुछ समय केलिए ही सही वह आत्मलीन हो जाता है।

(5) रस स्वयं प्रकाशवान और चिन्मय है। इसका तात्पर्य है रस अपनी सत्ता को स्वयं प्रकाश कर देता है उसके लिए अन्य किसी प्रकाश कीआवश्यकता नही होती है। वह एक प्रकार की आनन्दमयी चेतना का संचार करता है जिसमें इन्द्रिय अनुभूति का प्रायः अभाव हो जाता है।

(6) रस लोकोत्तर चमत्कारमय है। यह सभी प्रकार की लौकिक परिभाषाओं से मुक्त है अर्थात लोक की जितनी वस्तुयें है उनसे विलक्षण है। वह अनिर्वचनीय है अर्थात अपरिभाषित।

(7) रस की समानता ब्रहमस्वाद से की गयी अर्थात यह ब्रहमस्वाद सहोदर है। जिस प्रकार ब्रहम को प्राप्त करने का आनन्द अनिर्वचनीय होता है उसी प्रकार रस का भी, यद्यपि ब्रहमानन्द स्थायी होता है रस का आनन्द अस्थायी परन्तु तत्क्षण तो ज्ञाता को उसी अव्यक्तावस्था का ज्ञान होता जो उसको एक विलक्षण आनन्द की अनुभूति कराता है भले ही वह कुछ क्षणों का ही हो। यहां पर यह स्पष्ट हो जाता हैकि काव्य अथवा नाटक के माध्यम से अभिव्यक्त भाव का आनन्द जो होता है वही रस होता है इनको अनेक प्रकार से व्याख्यायित किया गया है। काव्य के आस्वादन की स्थिति में एक ऐसी मानसिक क्रियाशीलता होती है जिसमें व्यक्ति एक अद्भुत अनुभूति की दशा में विचरण करने लगता है। ये क्रियायें पूरी तरह से मन पर प्रभावी हो जाती है जिसमें वशीभूत व्यक्ति ऐसी भावनाओं से भर जाता है

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

जो उसे विलक्षण आनन्द की प्राप्ति करा देती है यही रस की मूल अवधारणा है। जिसे पूरी तरह से मनोविज्ञान के विषय क्षेत्र के अन्तर्गत व्याख्यायित किया जा सकता है तथा व्यवहारिक प्रयोग के द्वारा इसे और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है क्योंकि व्यक्ति जब काव्य या अन्य किसी रस विषयक साधन को मनोरंजन या मनोनुकूल सामग्री के रूप में ग्रहण करता है तभी उसकी मानसिक वृत्ति में एक प्रकार की तत्परता उस विषय के प्रति हो जाती है और रसास्वादन से लेकर उसके बाद तक की स्थिति, उससे प्राप्त संस्कार, इस पूरी प्रक्रिया में मन की सशक्त भूमिका है। अन्यथा उपरोक्त कही गयी किसी भी प्रकार की क्रिया संभव नही। अतः रस सिद्धान्तः व व्यावहारिक रूप से भी मनोविज्ञान से पूर्णतया प्रभावित है तथा इसके अध्ययन में उसकी उपयोगिता भी। रस ही नही काव्यशास्त्र का प्रत्येक विषय मनोवैज्ञानिक है काव्य अथवा काव्यशास्त्र के सिद्धान्त विशेष मनः स्थिति में ही प्रतिपादित किये जाते है। अतः उनका मनोवैज्ञानिक होना स्वाभाविक है। विभिन्न सिद्धान्तों के प्रतिपादक विचार मंथन की प्रक्रिया में जो भी तर्क देते है वह नितान्त मानसिक परिपक्वता की परिणति का परिचायक होता है।

ध्वनि सिद्धान्त के प्रतिष्ठापक आनन्दवर्धनाचार्य ने ध्वनि को काव्य की आत्मा स्वीकार किया, जिसका अनेक परवर्ती आचार्यो द्वारा खण्डन किया गया है। परन्तु ध्वनिकार ने ध्वनि के विषय में जो भी मत प्रस्तुत किया उसे उन्होनें अपनी नवीन संकल्पना न बताकर पूर्व में बुधों द्वारा प्रकट बताया। ध्वन्यालोक की प्रथम कारिका में ही इसका विवेचन किया गया है।

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

बुध जनों के द्वारा काव्य की आत्मा ध्वनि का पहले से ही समाम्नात किया, दूसरे लोगो ने उसका अभाव कहा, अन्य लोगों ने भाक्त कहा, कुछ लोगों ने उसे वाणी से अगोचर कहा, अतः सहृदय जनों के मन की प्रीति के लिए उस ध्वनि का स्वरूप कहते है।[8]

काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्नातपूर्व

स्तस्याभावं जगदुरपरे भाक्तमाहुस्तमन्ये

केचिद्वाचां स्थितमबिषये तत्त्वमूचुस्तदीयं

तने ब्रूमः सहृदयमनःप्रीतते तत्वस्वरुपम्।।

ध्वनि को एक अन्य प्रकार से व्याख्यायित करते हुए ध्वनिकार कहते है महाकवियों के वचनों में प्रतीयमान कुछ और ही वस्तु है जो वह प्रसिद्ध अवयवों से अतिरिक्त रूप में स्त्रियों में लावण्य की भांति विशेष रूप से भासित होता है।[9]

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीसु महाकवीनाम्

यत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवानासु।।

काव्य शास्त्र के अनुसार इसका अर्थ जो भी हो परन्तु मनोविज्ञान में ध्वनि विषयक इस सिद्धान्त की स्थिति उच्चकोटि की मानसिक परिपक्वता का दर्शन कराती है। यह परिवक्वता जिस किसी भी मस्तिष्क की हो परन्तु यह न जाने कितने मनोवैज्ञानिक (काव्य शास्त्र की भाषा में सहृदयों) की मानसिक तृप्ति प्रदान करने के साथ ही साथ उनके चित्त का विस्तार करती है। मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार अनुकूलित व पूर्ण समायोजित व्यक्तित्व वाला व्यक्ति ही इस प्रकार के चमत्कारपूर्ण अर्थ का सृजन कर सकता है तथा उसको ग्रहण कर सकता

है। ध्वनिकार ने इसे काव्य की आत्मा स्वीकार करते हुए बुधों द्वारा उक्त कहा। अर्थात साधारण लोगों के ज्ञान से परे है, वह प्रतीयमान अर्थ महाकवियों की वाणी में कुछ अन्य ही वस्तु है। यह काव्य में उसी प्रकार चमत्कार उत्पन्न करता है जिस प्रकार स्त्रियों के अंग का नैसर्गिक लावण्य उनकी शोभा को विशेष उत्कर्ष प्रदान करता है। ध्वनि सिद्धान्त के प्रस्तुतकर्ता आचार्य आनन्दवर्धन द्वारा अन्य आचार्यो के मतों का खण्डन न करते हुए भी ध्वनि सिद्धान्त की स्थापना की गयी। उन्होनें शब्द और अर्थ के अलंकार तथा गुणों का समावेश अनिवार्य माना। इसी उद्देश्य से काव्य का विशेषण देते हुए उन्होंनें लिखा है–

विविध वाच्य, वाचक और रचना के प्रपंच से सुन्दर काव्य का वही अर्थ सारभूत है। जैसा कि आदिकवि वाल्मीकि का निहत सहचरी के वियोग से कातर क्रौन्च की चीख (आक्रन्द) से उत्पन्न शोक ही श्लोक रूप में परिणत हो गया।[10]

विधिवाच्यावाचकरचनाग्रप्रपंचचारुणः काव्यस्य स एवार्थः सारभूतः।

चादिकवेर्वाल्मीकेः निहतसहचरीविरहकातरक्रौन्चाकन्द्रजनितः

शोक एव श्लोकतया परिणतः।

और भी उन्होनें लिखा है– ललित व उचित सन्निवेश के कारण चारू काव्य का , शरीर की आत्मा की भांति सार रूप में स्थिर होकर सहृदय जनों द्वारा प्रशंसा के योग्य जो अर्थ है, उसके वाच्य और प्रतीयमान, ये दो भेद है।[11]

काव्यस्य हि ललितोचितसन्निवेशचारुणः शरीरस्येवात्मा साररुपतया स्थितः

सहृदयश्लाध्यो योऽर्थस्तस्य वाच्यः प्रतीयमानश्चेति द्वौ भेदो।

यहां ध्वनिकार का मत है कि काव्य में शब्द अर्थ ,भाव का सुन्दर सन्निवेश जिसके कारण उत्पन्न चमत्कारिता काव्य कीआत्मा प्रतीत होने लगे, तथा जो सहृदय जनों द्वारा प्रशंसनीय हो वही ध्वनि है इसके वाच्य और प्रतीयमान दो रूपों की चर्चा की गयी है। आनन्दवर्धन ने ध्वनि को सहृदय द्वारा प्रशंसनीय काव्य की आत्मा कहा। यहां पर ध्वनिकार का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण यह है कि ध्वनि जो है बुधों अर्थात विद्वानों द्वारा उक्त है तथा सहृदयों द्वारा भी सम्मान प्राप्त है। वह निश्चित रूप से हृदयग्राही है और हृदयग्रही वही वस्तु हो सकती है जिसमें व्यापक रूप में सहृदयों को प्रभावित करने की क्षमता हो। तो ध्वनि एक तो काव्य की आत्मा है और उपरोक्त कारणों से युक्त है अतः वह मनः स्थितियों को प्रभावित करने में सक्षम उत्कृष्ट तत्व है। उसमें अनुरंजन की शक्ति है तथा साथ ही साथ चमत्कार उत्पन्न करने की शक्ति भी। ध्वनिकार की जो सूक्ष्म मानसिक दृष्टि यहां पर ध्वनि को प्रतिपादित करने में प्रयुक्त हुई है वह सहृदय संवेद्य है इसलिए मनोवैज्ञानिक भी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. नाट्य शास्त्र– आचार्य भरत मुनि–पंचम अध्याय।
2. काव्यप्रकाश चतुर्थ उल्लास–श्री निवास शास्त्री साहित्य भण्डार, मेरठ।
3. वही।
4. वही।
5. वही।
6. दशरूपक धनंजय–चतुर्थ प्रकाश श्री निवास शास्त्री साहित्य भण्डार, मेरठ।

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

7. साहित्यदर्पण 3.2, डा0 निरूपण स्वरूप विद्यालंकार, रतिराम शास्त्री साहित्य भण्डार मेरठ, 2004।

8. ध्वन्यालोक प्रथम उद्योत आनन्दवर्धनाचार्य, चौरवम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2000।

9. वही।

10. वही, पृष्ठ सं0 89।

11. वहीं, पृष्ठ सं0 45।